ॐ

REGD. NO. L. 2077

वर्ष १]

भक्ति

अङ्क ८]

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

वैशाख सम्वत् १९८४

निम्न लिखित महानुभाओं ने भक्ति के संरक्षक बन कर भक्ति को अपनाने की कृपा की है।

१. राय साहब श्री बल्लभ प्रसाद जी रईस आनरेरी मजिस्ट्रेट गुलज़ारबाग़, पटना १०१)

२. राव बहादुर लेफ्टेनेन्ट राव बलवीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा ५१)

३. श्रीमान् भाय भाई गनेशीलाल जी आरमी मिनिस्टर अलवर राज्य ५१)

४ राव श्रीराम रईस नांगल २५)

५. म० शोभाराम जी डूंगरवास २५)

६. चौ० धर्मसिंह जी मलिक नायब तहसीलदार रेवाड़ी २५)

७. राव निहालसिंह जी सूबेदार पान्हावास २५)

८. बा० स्वयम्बरदास जी बी० ए० इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स पटना यू० पी०। २५)

९. श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी ले० राव बहादुर बलवीरसिंह जी ओ० बी० ई० जागीरदार रामपुरा रेवाड़ी। २५)

सहायक।

१. पं० मूलचन्द जी प्रेसीडेंट म्युनिस्पल कमेटी पलवल। ११)

२. श्रीमती उमरावकोर धर्मपत्नी राव जगमालसिंह जी रईस नांगल ११)

३. महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी। ५)

ॐ

"कर्तानु केवला भक्तिः" ।

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादकः—

भक्ति

एक प्रति का ।)

स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती ।

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जागृत करने वाली मासिक पत्रिका ।

वर्ष १ } भगवद्भक्ति आश्रम रामपुरा, वैशाख, पूर्णिमा सं० १६८४ । { अङ्क ८

॥ मंगलाचरणम् ॥

ओं पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥ १ ॥

यह संसार उस ब्रह्म से पूर्ण है वह स्वयं भी पूर्ण है और पूर्ण होने से ही पूर्ण कहा जाता है । पूर्ण के पूर्ण को लेकर पूर्ण ही शेष रहता है ॥ १ ॥

सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु माविद्विषा वहै ॥ २ ॥

हम दोनों साथ मिल कर रक्षा करें और साथ मिल कर खावें और साथ में ही पराक्रम

को बढ़ावें और हमारा पठन पाठन तेज युक्त हो और हम किसी के साथ द्वेष न करें ॥ २ ॥

अप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च
सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा।
ब्रह्म निराकरोद निराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु । तदात्मनि
निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ॥

मेरेकर चरणादि अङ्ग ब्रह्मध्यान अनुकूल तया से वृद्धि को प्राप्त होवें । ब्रह्म है या नहीं ऐसा निरादर मैं नहीं करूं । ऐसे ही वह मेरा निराकरण नहीं करै । हम परस्पर प्रीति से वर्तें । ब्रह्मात्मा में निरन्तर प्रेम करें । मेरे में शमादिक होवें । उपनिषदों में जो धर्म प्रकाशित हुए हैं वह सब मेरे में घटें ॥ ३ ॥

हृत्पद्मकर्णिकामध्ये स्थिरदीप निभाकृतिम् ।
अंगुष्ठमात्रमचलं ध्यायेदोंकारमीश्वरं ॥ ४

हृदय कमल और कर्णिका के मध्य में विराजमान स्थिर दीपक तुल्य प्रकाशमान् अंगुष्ठ मात्र, अचल, ओंकार स्वरूप ईश्वर का ध्यान करें ॥ ४ ॥

ह्रस्वोदहति पापानि दीर्घसम्पदप्रदोव्ययः ।
अर्धमात्रा समायुक्तः प्रणवो मोक्षदायकः ॥ ५ ॥

ह्रस्वमात्रा स्वरूप पापों को दहन करता है । दीर्घ मात्रा स्वरूप अव्यय सम्पत्ति को देता है । अर्धमात्रा से समायुक्त ओंकार स्वरूप ब्रह्म मोक्षदायक है ॥ ५ ॥

नमो विश्व स्वरुपाय विश्वस्थित्यन्तहेतवे ।
विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमोनमः ॥ ६ ॥

विश्व के स्थिति, को रक्षा और नाश हेतु विश्वस्वरूप भगवान् के लिये नमस्कार हो । विश्व के ईश्वर विश्वस्वरूप, गोविन्द भगवान् के लिये नमस्कार हो ॥ ६ ॥

यस्याज्ञया जगत्सृष्टा विरंचिः पालको हरिः ।
संहरता काल रुद्राख्यो नमस्तस्मै पिनाकिने ॥ ७ ॥

जिस की आज्ञा से यह जगत् रचा गया ऐसा विरंची पालक हरि है। संहार कर्त्ता काल रूपी रुद्र है उस पिनाक धारी को नमस्कार हो ॥ ७ ॥

निष्कलंकाय विमोहाय शुद्धायाशुद्ध वैरिणे ।
अद्वितीयायमहते श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥ ८ ॥

निष्कलंक, विगतमोह, दुष्टवैरी, शुद्ध, अद्वितीय, महत्तेजस्वरूप श्रीकृष्ण केलिये नमस्कार हो ॥ ८ ॥

प्रसीद परमानन्द प्रसीद परमेश्वर ।
अधिव्याधि भुजंगेन दष्टं मामुद्धार प्रभो ॥ ९ ॥

हे परमानन्द प्रसन्न हो ! हे परमेश्वर प्रसन्न हो ! हे प्रभो ! अधिव्याधिरूप भुजंग से ग्रस्यमान् मेरा उद्धार कर ॥ ९ ॥

श्रीकृष्णरुक्मणिकान्त गोपीजनमनोहर ।
संसारसागरे मग्नं मामुद्धरजगद्गुरो ॥ १० ॥

हे रुक्मणी कान्त ! हे गोपीजन प्रिय ! हे जगद्गुरो, श्रीकृष्ण ! मुझ संसार में डूबते हुये का उद्धार कर ॥ १० ॥

केशव क्लेश हरणं नारायण जनार्दन ।
गोविन्द परमनन्द मां समुद्धर माधव ॥ ११ ॥

हे केशव ! हे क्लेश हरण ! हे नारायण ! हे गोविन्द ! हे जनार्दन ! हे परमानन्द ! हे माधव ! मेरा उद्धार कर ॥ ११ ॥

प्रार्थना ।

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥

ॐ यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ २ ॥

ॐ द्विषो नो विश्वतो मुखानि नावेव पारय । अप नः शोशुचदघम् ॥ ३ ॥

ॐ दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ ४ ॥

ॐ यतो यतः समीहसे ततो नोऽभयं कुरु । शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ ५ ॥

ॐ ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये साम प्राणं प्रपद्ये । वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥६॥

ॐ यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वाति तृण्णम् । बृहस्पतिर्मे तद्दधातु शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ ७ ॥

ॐ नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽअस्त्वर्चिषे । अन्यांस्तेऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यं शिवो भव ॥ ८ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ ९ ॥

ॐ रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचंराजसु नस्कृधि । रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥ १०

ॐ प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु । प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्रे उतार्ये ॥ ११ ॥

ॐ पिता नोऽसि पिता नो बोधि नमस्ते । अस्तु मा मा हिंसीः ॥१२॥

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्धनं । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥१३॥

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शत मदीना स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १४ ॥

ॐ तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि । बलमसि बलं मयि धेहि । ओजोऽस्योजो मयि धेहि । मन्युरसि मन्युं मयि धेहि । सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ १५ ॥

ॐ तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि अग्ने यन्मे तन्वा ऊनन्तन्म आपृण ॥ १६ ॥

ॐ अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावा पृथिवी उभे इमे । अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरा दधरादभयं नो अस्तु ॥ १७ ॥

ॐ अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरोयः । अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वाशा मम मित्रं भवन्तु ॥ १८ ॥

ॐ असतो माम् सद्गमय तमसो माम् ज्योतिर्गमय मृत्योर्मामृतं गमयेति ॥ १९ ॥

ॐ नमः शम्भवाय च मयो भवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ २० ॥

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्ति रायः शान्ति रोषधयः शान्ति । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व ँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्ति रेधि

हे परमेश्वर परम पिता परमात्मन् ! आप हमारे संरक्षक और सहायक हैं । हम तुम्हारी ही भक्ति और पूजा करें और तुम्हारे ही पवित्र नामका सदा जप करें तुम्हारी ही सहायता चाहें । आप अनन्त क्षमा स्वरूप और करुणासागर हैं । हम तुम्हें छोड़ कर और किस की शरण लें । तुमही केवल एकमात्र हमारे सर्वस्व हो । हम तुम्हारे पवित्र चरणों को बार बार प्रणाम करते हैं । आप ही हमारी टेक हो । हे अनन्त अपार प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप हमको श्रेयस्कर और श्रेष्ठ मार्गसे अपनी प्राप्ति की ओर ले चलो । जिस मार्ग से तुम्हारे परम भक्त तुमको प्राप्त होचुके हैं और जिन पर तुम प्रसन्न हुए हो । हे सर्वशक्तिमान् हमारे प्रभो ! हमें उस मार्ग से कभी मत चलाओ जिस पर तेरे अभक्त चले हों । तुम हमारे अन्तर्यामी प्रेरक और रक्षा हो । हम तुम्हारी ही शरण हैं । हमारी रक्षा करो । हे जगदीश्वर जगदाधार ! हमको वह पवित्र हृदा-

न्यिका बुद्धि दो जिस में केवल तुम्हारा ही निश्चय दृढ़ हो। हमारे नेत्र और हृदय खुले हों और उन पर तुम्हारा पूरा अधिकार हो। अय हमारे जीवन के नियन्ता स्वामिन्! हमारी प्रत्येक क्रियायें और चेष्टायें आप के चरणों में समर्पण हों। हम सबको अपना ही स्वरूप देखें और सब की भलाई में अहर्निश लगे रहें तथा तुम्हारी ही भक्ति का सर्वत्र प्रचार करें। हे पतित पावन दीनों के उद्धार करने वाले परमात्मन्! हम को ऐसी उदार बुद्धि प्रदान करो जिस से हम दीन दुःखियों की सहायता सच्चे हार्दिक मन से करते रहें। हमें तुम्हारे प्रेम में ही जीवन प्रिय हो। हे विश्वस्वरूप! हम तुम्हारे भक्ति मार्ग पर चलते हुये महान् दुःखों को भी सानन्द सहन कर सकें, सब से प्रेम करें और सब को अपना आत्मा जानें। हे अनन्त शक्ति परमात्मन्! आप की शक्तियां अपरिमित और बेअन्दाज हैं। हे प्रभो! अन्त में हमारी यही प्रार्थना है कि हम तेरे सच्चे भक्त बनें। हे अनन्त अपार ज्ञानानन्द स्वरूप! आप को हमारा अनन्त धन्यवाद हो और आपका हमको आशीर्वाद हो। हे स्वामिन्! साञ्जलिबद्ध आपको भुयोपि नमस्कारों पर नमस्कार है।

ओं शंकरोतु शंकरः।

संसार समाचार ॥

दुनिया भर में सबसे अधिक गर्म स्थान बिलोचिस्तान में क्लात नाम का स्थान है।

सबसे अधिक वर्षा भारत के आसाम प्रान्त के चीरापूंजी स्थान में होती है।

सब से अधिक सर्दी साइबेरिया के बरखोयांसक नामक स्थान में पड़ती है।

सब से नीचा स्थान शाम देश की जार्डन नदी की घाटी है।

सब से बड़ी खारे पानी की झील एशिया की कास्पियन है झील।

सब से बड़ी अंतरीप रास कुमारी भारत में है।

सब से बड़ी खाड़ी भारत में बंगाल की खाड़ी है।

सब से ऊंची झील असकाल है, जिसकी ऊंचाई १६६०० फीट है।

सब से नीची झील डेड सागर है, जिस की निचाई १३०० फीट है।

सब से गहरी मीठे पानी की झील एशिया की बेकाल झील है।

सब से बड़ी सड़क ग्रैंडट्रंक रोड है, जो कलकत्ते से पेशावर तक गई है।

सब से अधिक आबादी चीन की है।

भजन।

फागुण के दिन चार होली खेलन दे ॥टेक॥
बिन करताल पखावज बाजै,
अनहद की झनकार ॥१ ॥
बिन सुर राग छतीसों गावै,
रोम रोम रंग सार ॥ २ ॥
शील संतोष की केशर घोली,
प्रेम प्रीत पिचकार ॥ ३ ॥
उड़त गुलाल लाल भये बादल,
बरसत रंग अपार ॥ ४ ॥
घट के पट सब खोल दिये हैं,
लोक लाज सब डार ॥ ५ ॥
होली खेल पियारी पिय घर,
सोई प्यारी पिय प्यार ॥ ६ ॥
मीरां के प्रभु गिरधर नागर,
चरण कमल बलिहार ॥ ७॥

भजन।

राणाजी म्हारो कांई करसी,
म्हारे शिर पर सालिगराम ॥टेक॥
मीरां से राणा कहीरे सुन मीरां म्हारी बात।
साधों की संगत छोड़ दे रे, सखियां सब
सकुचात ॥ १ ॥
मीरां ने सुनियो कही रे सुन राणा मेरी बात।
साध तो भाई बाप हमारे,
सखियां क्यों घबरात ॥ २ ॥
जहर का प्याला भेजियारे दीजो मीरां के हाथ।
अमृत कर के पी गई रे,
भली करै दीनानाथ ॥ ३ ॥
मीरां प्याला पीलिया रे बोली दो कर जोर।
तैं तो मारन की करी रे,
मेरो राखन हारो कोई और ॥ ४
आधे जोहड़ कीच है रे आधे जोहड़ हौज।
आधे मीरां एकली रे,
आधे राणा की फौज ॥ ५ ॥
काम क्रोध को डाल के रे शील लिये हथियार।
जीती मीरां एकली रे,
हारी राणा की धार ॥ ६ ॥

भजन।

नाचूंगी रघुनन्दन के आगे ॥ टेक ॥
नाच नाच रघुनाथ रिझाऊं,
प्रेमी जन को नाचूंगी ॥ १ ॥
प्रेम प्रीति का बान्ध घुंघरा,
सुरत की कछनी काछूंगी ॥
लोक लाज कुल की मर्यादा,
यामें एक न राखूंगी ॥
पिया के पलंग पै जा पौढ़ूंगी,
मीरां हरि रंग राचूंगी ॥

भजन।

मेरा बेड़ा लगादो जी पार प्रभु जी मैं अरज करूं।
या जग में मैं बहु दुःख पायो,
संशा शोक निवार ॥ १ ॥
अष्ट कर्म की तलब लगी है,
दूर करो दुःख पार ॥ २ ॥

यो संसार सब बहयो जात है,
लख चौरासी धार ॥ ३ ॥
मीरां के प्रभु गिरधर नागर,
आवागमन निवार ॥ ४ ॥

भजन।

पायोजी मैंने नाम रत्न धन पायो ॥ टेक ॥
वस्तुअमोलक दी मेरे सतगुरु,
कृपा कर अपनायो ॥ १ ॥
जन्म जन्म की पूंजी पाई,
जग में सभी गंवायो ॥ २ ॥
खर्चे नाहीं कोई चोर न लेवे,
दिन दिन बढत सवायो ॥ ३ ॥
सत् की नाव खेवटिया सतगुरु,
भव सागर तर आयो ॥ ४ ॥
मीरां के प्रभु गिरधर नागर,
हर्ष हर्ष जस गायो ॥ ५ ॥

भजन।

मैं तेरे रङ्ग राची सांवरिया ॥ टेक ॥
औरों के पिया परदेश बसत हैं,
लिख लिख भेजें पाती।
मेरा पिया मेरा पास बसत है,
कह न सकूं शरमाती ॥ १ ॥
सुहा चोला पहन सखीरी,
मैं झुरमट खेलन जाती।
झुरमट में मोहे मोहन मिलिया,
खोल मिली गल छाती ॥ २ ॥
और सखी मद पी पी माती,
मैं बिन पीये मदमाती।
प्रेम भटी को मैं मद पीयो,
छकी रहू दिन राती ॥ ३ ॥
जाऊं न पीहर जाऊं न सासरे,
सद्गुरु सैन लगाती।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर,
हरि चरणन की दासी ॥ ४ ॥

पेट के दर्द की दवा ॥

कारबोलिक एसिड १ तो० कपूर देशी उमदा ६ तो० इन को मिला कर धूप में काक मजबूत लगा कर रख दे जब दवा पिघल जावे तब २-३ बूंद पानी में डाल कर पिलावे राम बाण दवा है।

नमूनिया की दवा ॥

अफीम उमदा ६ मा० कुनैन सलफास ६ मा० गोदंती हड़ताल भस्म ६ मा० इन को मिला कर पानी में चना के बराबर गोली बनावे दो गोली गरम पानी के साथ दे और खाने को दूध के सिवा कुछ न दे तो आराम हो।

धीसाराम वैद्य।

भक्ति ।

(पृष्ठांक से आगे)

नवधा भक्ति ।

शास्त्रों में नौ प्रकार की भक्ति का प्रतिपादन किया है ।

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्

१. ईश्वर के गुण और महात्मा सुनने की भक्ति ।

२. ईश्वर के किर्तन की भक्ति ।

३. स्मरण की भक्ति ।

४. पाद सेवन करने की भक्ति ।

५. अर्चन की भक्ति ।

६. वन्दन की भक्ति ।

७. दास भाव की भक्ति ।

८. सखा भाव की भक्ति ।

९. आत्म निवेदन की भक्ति ।

श्री भगवान् की प्राप्ति के लिये यह नौ प्रकार की भक्ति मानों एक सीढी है। जिसप्रकार से मनुष्य को ऊंचे शिखर पर चढने के लिये सीढी की आवश्यकता होती है और वह एक सीढी से दूसरी सीढी पर पैर रख कर ऊपर पहुंच जाता है इसी प्रकार से भगवद्धाम की प्राप्ति के लिये यह नवधा भक्ति रूपी सीढी है। इनमें से क्रमशः एक के बाद दूसरी भक्ति का आचरण करते हुए क्रमशः भगवान् की तन्मय रूपी भक्ति की प्राप्ति होती है। अब हम एक २ भक्ति को लेते हैं ।

श्रवण ।

भगवद्धाम को पहुंचाने की सब से पहली सीढी श्रवण है। भगवान् की कीर्त्ति, महिमा, सामर्थ्य, गुणादिकों को श्रद्धा भक्ति पूर्वक सुनना श्रवण है संसार में जितने भी कार्य हैं सब का प्रादुर्भाव श्रवण द्वारा होता है। जब हम पहले किसी बात को सुनते हैं तो सुनने के पश्चात् ही हमारी उसमें प्रवृत्ति होती है । यदि देखा जाय तो वेदों का भी प्रादुर्भाव श्रवण द्वारा ही हुवा है और यही कारण है कि वेदों को श्रुति कहते हैं श्रवण से केवल एक मात्र यही तात्पर्य नहीं है कि हम भगवान् के गुणों का श्रवण करें किन्तु श्रवण करके विचारें और इन गुणों को अपने हृदय में

अंकित करें जब जिज्ञासु को भगवान् के गुण श्रवण करने की जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है तब उस की ऐसी स्थिती होजाती है कि जिस प्रकार तृप्ति पुरुष के समक्ष में अनेकानेक भोजन उपस्थित करने पर भी उस को शान्ति उत्पन्न नहीं होती है उसी प्रकार उस जिज्ञासु की तृप्ति केवल एक मात्र श्रीभगवान् के गुणानुवाद से होती है । इसके अभाव में वह व्याकुल हो जाता है । भागवत् का वचनहैः—

तव कथामृतं तप्त जीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवण मंगलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ये भूरिदा जनाः ॥

आप का कथामृत दुःखियों को सजीव कर देता है । पाप को नष्ट करता है और सुनने से कल्याण करता है ऐसा कवि लोग कहते हैं । अर्जुन गीता में कहते हैः—

यदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
सत्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥

हे भगवन् ! आपने मेरे प्रति कृपा करके परम गुह्य आत्म तत्व को जो कहा है उस से मेरा मोह नष्ट होगया है । राजा परिक्षित को और शिवरी को श्रवण से ही भगवत्प्राप्ति हुई थी ।

कीर्त्तन ।

जब हम किसी वस्तु के गुणों को श्रवण करते हैं और श्रवण करके अपने हृदय में अंकित करते हैं तो स्वतः ही उन गुणों को दूसरे के प्रति कहने की इच्छा होती है । इसी प्रकार से जब मनुष्य श्री भगवान् के अनुपम गुणों का श्रवण करता है तो भला यह कैसे सम्भव हो सकता है कि वह चुपचाप बैठा रहे । वह मनुष्य श्रवण मात्र से सन्तुष्ट नहीं हो सकता । श्रवण करने से जो कुछ लाभ उसे हुआ है उसको वह अवश्य दूसरों में प्रचार करेगा । यही भगवान् का कीर्तन है । श्री भगवान् के यश, महात्म्य, स्तुति, कथादि का प्रकाशित करना यह कीर्तन कहाता है जिस स्थान में भगवान् का कीर्तन होता है उस स्थान का वातावरण पवित्र होकर वहां के रहने वाले मनुष्यों के हृदयों को पवित्र करता है । यह कीर्तन रूपी भगवत् सेवा छोटे बड़े सभी कर सकते हैं । इसके लिये किसी साधन की आवश्यकता नहीं । जो मनुष्य श्रद्धा से केवल भगवान् की प्रीति के निमित्त कीर्तन करता है वह अपना ही नहीं संसार का भी बड़ा उपकार करता है ।

यस्या खिलाघौ बहुभिः सुमंगलैः
वाचो विमिश्रा गुण कर्म जन्मभिः ।
प्राणन्ति शुम्भन्ति पुनन्ति वै जग
यास्तद्विरक्ताः शव शोभना मताः ॥

जो वाक्य भगवान् की कथा से पूरित है वह कहने वाले सुनने वाले आदि सबों को पवित्र करता है। और जो वाक्य उन कथाओं से रिक्त है वह वस्त्रादिकों से शोभित मुर्दे की भान्ति है।

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्
स्मारन्ति स्मारयन्तो ये हरेर्नाम कलौ युगे

मनुष्यों में वह भाग्य शाली और धन्य हैं जो कलियुग में हरि का नाम स्मरण करते हैं और कराते हैं। नारद मुनि ने कीर्तन द्वारा जगत् में भगवान् के नाम को फैला कर संसार का बहु उपकार किया। गुरु नानक ने भगवान् के नाम का प्रचार करके समस्त पंजाब में जाग्रति उत्पन्न कर दी थी। भगवान्-गीता में कहते हैं:—

मच्चित्ता मद्गत प्राणा बोधयन्तः परस्परम्
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च

मेरे मन, हृदय प्राण और सर्व शक्तियों और इन्द्रियों को समर्पण कर मेरा कीर्तन करते हुए सदा सन्तोष को प्राप्त होते हैं।

स्मरण ॥

हम जिह्वा द्वारा जो भगवान् का कीर्तन करते हैं उसका प्रभाव स्थूल जगत् पर पड़ता है परन्तु चित्त द्वारा जो भगवान् का स्मरण किया जाता है उसका प्रभाव सूक्ष्म जगत् पर पड़ता है। इससे श्रीभगवान् की विशेष सेवा होती है। मनुजी कहते हैं कि:—

विधियज्ञाज्जप यज्ञो विशिष्टे दश भिर्गुणैः
उपांशुः स्याच्छत गुणः सहस्रो मानसः स्मृतः

विधि यज्ञ से साधारण जप दश गुणा श्रेष्ठ है, उपांशु जप सौ गुणा और मानसिक जप हजार गुणा श्रेष्ठ है। यह नाम स्मरण भी सब किसी से किया जा सकता है। रूग्ण से रूग्ण भी नाम स्मरण कर सकता है बल्कि जब रोगी शय्या पर नाम का जप करता है तो उसको शान्ती होती है। भगवान् के नाम का स्मरण चलते फिरते सोते बैठते सर्वदा कर सकते हैं। जैसे:—

सर्वदा शुचिरशुचिर्वा पठन्ब्राह्मणः सलोकतां
समीपतां सरूपतां सायुज्यतामेति ।

सर्वदा पवित्र तथा अपवित्र अवस्था में भी नाम का स्मरण करने से सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होता है। कबीर महात्मा कहते हैं:—

सुमिरन की सुधि यों करो जैसे कामी काम ।
एक पलक बिसरे नहीं निशदिन आठों जाम ॥
सुमिरन की सुधि यों करो जैसे दाम कंगाल ।
कहे कबीर बिसरे नहीं पल पल लेत सम्हाल ॥
सुमिरन सो मन लाइये जैसे दीप पतंग ।
प्राण तजे छिन एक में जरत न मोड़े अंग

श्री भगवान् गीता में कहते हैं:—

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव भावितः ॥
तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पित मनो बुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥

हे कौन्तेय ! जो जिस पदार्थ को स्मरण करता हुआ मरण काल में शरीर को छोड़ता है वह उसी को पाता है। इसलिये सब काल में मुझ में मन और बुद्धि को लगाये हुए मेरा चिन्तन कर और युद्ध भी कर मुझ को अवश्य प्राप्त होगा इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अविस्मृतिः कृष्ण पदारविन्दयोः,
क्षिणोत्य भद्राणि च शान्तनोति ।
सत्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं,
ज्ञानं च विज्ञान विराग युक्तम् ॥

श्री भगवान् के चरण कमलों का स्मरण अमंगल को दूर करता है, कल्याण करता है, और परमात्मा में भक्ति ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य उत्पन्न करता है।

पाद सेवन।

यद्यपि स्मरण के अवसर पर श्रीभगवान् का ध्यान किया जाता है किन्तु उस अवस्था में नाम स्मरण मुख्य रहता है। जब नाम स्मरण द्वारा अन्तःकरण शुद्ध होजाता है और प्रेम का बीज अंकुरित हो जाता है तो भगवान् के रूप रस के आस्वादन करने की प्रबल उत्कण्ठा उत्पन्न होती है। यथार्थ साकारोपासना यहां से ही प्रारम्भ होती है। इस अवस्था में जप भी बना रहता है परन्तु भगवान् की मूर्ति का सांगोपांग ध्यान मुख्य हो जाता है। जब पुरुष की ऐसी स्थिति होती है तो ध्यान मुख्य हो जाता है और जप केवल ध्यान की स्थिरता के अर्थ किया जाता है।

एतद्विष्णोः परमं पदं ये नित्योद्युक्तास्तं यजन्ति न कामात्तेषामसौ गोरूपः प्रयन्नात्प्रकाशये द्वात्म पदं तदेव ।

जो लोग सर्वदा यत्न पूर्वक श्रीविष्णु के परम पद की आराधना करते हैं और विषय वासना से प्रीति नहीं रखते उनके पुरुषार्थ के कारण विष्णु भगवान् गोपवेश में उनके निकट प्रकट होते हैं।

ध्यायन्ति पुरुषं दिव्य मच्युतञ्च स्मरन्ति ये ।
लभन्ते ऽच्युत स्थानं श्रुति रेषा पुरातनी ॥

जो व्यक्ति दिव्य पुरुष अच्युत भगवान् का ध्यान और स्मरण करते हैं वह श्री भगवान् के स्थान को प्राप्त होते हैं।

अर्चन।

अर्चन में हृदय का अनुराग और प्रेम भाव मुख्य है। आन्तरिक प्रेम भाव से श्री भगवान् की जो अर्चा की जाती है। वही यथार्थ में श्रेष्ठ अर्चन है। और जिस में प्रेम

भाव का अभाव है वह सर्वदा व्यर्थ है। श्री भगवान् तो पूर्ण काम है उनको संसार के किसी पदार्थ की आवश्यकता नहीं है वह तो केवल एक मात्र प्रेम के भूखे हैं। शिवरी जिस समय प्रेम से झूठे बेरों को अर्पण करती है उस समय भगवान् जिस प्रेम भरी रुची के साथ ग्रहण करते हैं यह कथन से बाहर है। मनुष्य को अपने प्रत्येक कर्म में भगवान् की पूजा का ध्यान रखना चाहिये। जो वचन उच्चारे तो मानो भगवान के स्तोत्रों का पाठ करता हूं जो यात्रा चले मानो भगवान् की प्रदक्षिणा करता हूं। इत्यादि अपने सब कर्मों में भगवत् पूजा का ध्यान रक्खे यह पांचवी प्रकार की भक्ति है।

वन्दन।

जब मनुष्य की भगवान् की पूजा परिपक्व हो जाती है तो वन्दना की अवस्था आती है। मनुष्य उन की असीम दया का परिचय पाकर प्रेमोन्मत्त हो जाता है और उस का हृदय स्वाभाविक ही उन की स्तुति और वन्दना की ओर झुक जाता है। इस अवस्था में मनुष्य का हृदय भगवान् की वन्दना में ही प्रवृत्त हो जाता है। श्री कृष्ण भगवान् की कृपा से अर्जुन को जब यह अवस्था प्राप्त हुई तो उन की कैसी स्थिति होती है उस का वर्णन गीता में इस प्रकार है:—

वायु यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः,
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः,
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते॥
नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते,
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्याऽमित विक्रमस्त्वं,
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः॥

हे भगवन्! तुम वायु, यम, अग्नि, चन्द्र, वरुण, प्रजापति, और सब के पितामह हो, तुम को प्रणाम है, फिर प्रणाम, है सहस्र बार प्रणाम है और बार २ प्रणाम है। तुम्हारे आगे प्रणाम करता हूं। तुम्हारे पीछे प्रणाम करता हूं तुम्हारी सब ओर प्रणाम करता हूं। हे देव! तुम्हारी शक्ति अनन्त है और बल अमित है तुम सब के आधार हो।

दास भाव॥

दास भाव सब भावों की जड़ अर्थात् भित्ति है। नौकर सांसारिक मालिक के प्रति जो भाव रखता है वह भाव इस दास भाव का द्योतक नहीं हो सकता क्योंकि वह तो अपने स्वार्थ के लिये है और जब स्वार्थ सिद्धि नहीं होवे तब वह अपने मालिक को छोड़ भी सकता है। परन्तु भगवान् के प्रति जो दास भाव होता है उसका सम्बन्ध टूट नहीं सकता क्योंकि उस में केवल प्रेम के कारण सेवा की जाती है। हनुमानजी का रामचंद्रजी के प्रति दासभाव था और जिस समय वह अयुध्या से विदा होते

है तो उन को एक सुन्दर हार भेंट किया जाता है परन्तु हनुमान जी सब मनकों को तोड़ २ कर फेंक देते हैं। पूछा जाता है कि किस कारण से आपने सब मन के तोड़ दिए तो उत्तर मिलता है कि जिस वस्तु में "राम" नहीं उस का मैं क्या करूंगा। इस पर उनसे पूछे जाने पर कि क्या आप के शरीर में राम है जो आप ने धारण कर रक्खा है तो हनुमान जी तुरन्त हृदय को चीर कर अपने शरीर में राम नाम दिखाते हैं। धन्य हैं ऐसे पुनीत भक्तों से यह वसुन्धरा पवित्र क्यों न हो।

सखा भाव

महाबाहु अर्जुन का श्रीकृष्ण के प्रति सखा भाव था। और इसी भाव से उन्हों ने वह गति पाई जो देवताओं को भी दुर्लभ है। जैसे मित्र अपने मित्र से जी खोल कर सब बातें करता है उस से अपने दोष भी निःसंकोच कह देता है क्योंकि वह जानता है कि वह बुरा नहीं समझेगा वह एक दूसरे पर अधिकार रखते हैं। वैसे ही भक्त और भगवान् का इस अवस्था में सम्बन्ध हो जाता है। वह भगवान् को अपना साथी समझता है।

आत्म निवेदन॥

यह सब से मुख्य और अन्तिम साधना है। इस भाव से मनुष्य भगवान् का ही हो जाता है। जो कुछ भी कर्म करता है वह सब भगवान् के लिए करता है। उस को अपनी किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए जीवन की अभिलाषा नहीं वह तो केवल एक मात्र भगवदर्थ अपना जीवन समझता है।

भूमानन्द ब्रह्मचारी।

निष्काम कर्म करो।

निष्काम कर्म्म करने में बड़ा आनन्द है। निष्काम कर्म्म बड़ी शक्ति है। निष्काम कर्म्म ही यथार्थ कर्म्म है इस के अतिरिक्त सब अकर्म हैं। यह सत्य का मार्ग है, यह प्रेम का मार्ग है, यह ज्ञान की पराकाष्ठा है, यह भक्ति का सोपान है, यह अन्तःकरण को पवित्र करने का अतिश्रेष्ठ और अति तीव्र मंत्र प्रयोग है। यह सर्व अवस्थाओं, सब

वर्णों, सब धर्मों और समस्त आश्रमों में साधन-योग्य है, इस में सब का अधिकार है। यह सब चराचर की सेवा का अवसर देता है। यह गुरुओं का गुरु, आचार्यों का आचार्य और विद्वानों का विद्वान् है। यह स्वयं शक्ति है। यह एक बार आरम्भ किया हुआ अपनी ही शक्ति से पूर्णता को प्राप्त हो जाता है। इसका केवल आरम्भ होना कठिन है। भगवान् ने अपने प्यारे सखा अर्जुन को बड़े प्रेम से समझाया है वह कहते हैं:—

नेहाभि क्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥

इस योग मार्ग में किया हुआ आरम्भ कर्म व्यर्थ नहीं जाता और इस में विधि उल्लंघन का पाप भी नहीं होता। इस धर्म का थोड़ा सा भी आचरण जन्म मरण रूपी महान् भय से बचाता है। यह क्यों? इस लिये कि इस से जीव को बन्धन नहीं होता, इस में फल की इच्छा नहीं होती, यह आसक्ति रहित है। हम भलाई और बुराई से बन्धे हुए हैं। जब भलाई की इच्छा नहीं और बुराई का डर नहीं फिर बन्धन कैसा? जब हम फल की अभिलाषा करते हैं तब ही फंसते हैं। जिस कर्म में अहंकार होता है वही भोगना पड़ता है। जब जीव को यह ज्ञान हो जाता है कि आत्मा कर्म नहीं करता प्रकृति कर्म करती है फिर वह अपने को कर्म से पृथक् मानता है और बन्धन रहित हो जाता है। यह निष्काम कर्म की परा काष्ठा है जिस में कर्ता अपने को द्रष्टा रूप देखता है और अपने शरीर, मन और इन्द्रियों को कर्म करता हुआ देख कर आप कर्म में लिपायमान नहीं होता। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है परन्तु यह उन की भूल है गीता में भगवान् ने बार २ यही उपदेश दिया है कि निष्काम कर्म में जीव को फल नहीं भोगना पड़ता। एक उदाहरण से बात समझ में आजावेगी। मान लीजिए एक आदमी आप के हां मजदूरी करने आता है वह दिन भर मजदूरी करता है और जब शाम को आप मजदूरी देते हैं तो वह मजदूरी लेने से इनकार कर देता है और आप का सन्तोष कर देता है कि मैं केवल अपना काम समझ कर इस काम में प्रवृत्त हुआ था। जब आप अनेक तरह उसे समझाते हैं परन्तु फिर भी वह मजदूरी लेना स्वीकार नहीं करता है तो बताइये आप उसका क्या करेंगे? आप उस कर्म को उसके पीछे क्यों कर बान्धेंगे? यह कर्म फल का त्याग हुआ। अब विचारिए वह पैसे कहां गए? चाहे वह आपके पास रहे चाहे वह आपने किसी को दे दिए वह प्रकृति में मिल गया। उस के साथ जिस आत्मा का सम्बन्ध था उसने उस से अपना पीछा छुड़ा लिया। आप प्रश्न कर सकते हैं कि पैसे तो चले गए परन्तु कर्ता के साथ करने का संस्कार शेष रहा। आपका कहना यथार्थ है यहां तक यह कर्म

का त्याग हुआ । इस से आगे चल कर यदि कर्म करने वाला भक्त है और यह सोच कर कर्म करता है कि यह शरीर भगवान् का है, मैं भी भगवान् का हूं और यह कर्म भी भगवान् का है तो भक्ति से उसका कर्म भगवान् के अर्पण हो गया, और वह उसके फल भोगने से बच गया। यदि वह ज्ञान से यह समझता है कि आत्मा कर्म नहीं करता समस्त कर्म प्रकृति में हो रहा है और जिस प्रकार विश्व की रचना में प्रकृति नाना कर्म कर रही है ऐसे ही इस शरीर रूपी रचना में भी और इस शरीर रूपी मैशीन से भी कर्म हो रहा है। यह शरीर मेरा नहीं, मैं इसका कर्त्ता नहीं, यह सब प्रकृति का खेल है तो उस को कर्म लिपायमान नहीं करते। ऐसी अवस्था में कर्म का बन्धन नहीं होता और जब कर्म का बन्धन नहीं होता तब ही जीव मुक्त हो सकता है और गीता के बार २ अध्ययन से यह बात सहज ही समझ में आसकती है। निष्काम कर्म का फल जीव को भोगना नहीं पड़ता। यह भव बन्धन को तोड़ने वाला है। इस के करने में भी बड़ा आनन्द है और सोचो तो सही आनन्द क्यों न हो मनुष्य को कर्म करने में अधिक कष्ट नहीं होता कारण कर्म से तो मन, इन्द्रियां शरीर सब एकाग्र और स्वस्थ रहते हैं, मनुष्य को तो इस के फल की चिंता रहती है और जब फल का पहले ही से त्याग समझ लिया फिर दुःख किस बात का? फिर तो आनन्द ही आनन्द है। इसी लिए भगवान् निष्काम कर्म-योग को सब से बड़ा बताते हैं। हमने ऊपर यह बताया था कि वास्तविक में निष्काम-कर्म ही कर्म है और सब अकर्म है। आप भी सोचिए हम कर्म क्यों करते हैं? आनन्द के लिए। और आनन्द किस में है? स्वतंत्रता में। फिर भला विचारिए यदि हम आयु भर कर्म करें और इस के फल स्वरूप बन्धन में पड़ें तो हम ने कर्म किया या अकर्म सकामकर्म कितना भी उत्तम हो वह बन्धन का कारण है। जिस को स्वर्ग कहा जाता है आखिर कैद के सिवाय वह क्या है? यदि किसी आदमी को कहा जावे कि तुम को सब प्रकार के भोग पदार्थ मिलेंगे परन्तु तुम्हारी स्वतंत्रता छीन ली जावेगी तो ऐसे स्वर्ग को मूर्ख के सिवाय कौन पसन्द करेगा? कुछ दिन वह स्वर्ग ही नर्क बन जावेगा। स्वर्ग, नर्क दोनों ही बन्धन हैं और भले बुरे कर्म दोनों ही बन्धन के कारण हैं। इन में आनन्द कहां? यह तो बड़ी दुःखदाई बेड़ियां हैं केवल निष्काम कर्म ही जीव को आनन्द देने वाला है इस लिए बुद्धिमानों को इसीका अवलम्बन करना चाहिए।

(सम्पादक)

भक्त की भावना।

प्रभो! आज मेरा यह अविवेकी हृदय दुःख दावानल से झुलस कर पाप पङ्क के दूषित जल से अपना ताप बुझाने को सचेष्ट है इस लिये हे दयामय! आप अपनी भक्ति की अमृतनिस्यन्दिनी किरणों को इस दुःख दग्ध हृदयतल में फैलाकर, प्रशान्ततप इस हृदय को सांसारिक प्रबल प्रलोभनों के प्रगाढ जाल से खींच कर अपने अभय पथ की ओर लगादो। शान्ति सुधा से इसे आप्लावित करदो, भक्तिरस की त्रिपथगामिनी पवित्र धारा के प्रबल वेग से इस हृदय के त्रिविधः—आध्यात्मिक, आधिदैविक, और आधिभौतिक पापों को धोकर बहादो, इसे पवित्रतम करदो, अपनी त्रिजगत्प्रकाशिनी ज्योति को जगा कर इसे आलोकित करदो,।

भगवन्! मैं तुम्हारा हूं और तू मेरा है, अतः तेरे मेरे इस अभिन्न सम्बन्ध को यथार्थ स्थिति में बनाये रखने के लिये तुझे मेरे समस्त दोषों का परिमार्जन करना पड़ेगा, मेरे हृदाम में अपनी निष्काम भक्ति की विमल धारा को अप्रतिहत वेग से बहाना होगा, मेरे हृदय की संकीर्णता और क्षुद्रता को दूर हटा कर मुझे महत्व और विश्व बन्धुत्व के पवित्र सिद्धान्त से अवगत करना होगा। अन्यथा यह माया कृत भेद भित्ति सर्वदा ही मेरे हृदयतल प्रदेश में ज्ञानवरि, प्रवाह को रोके रहेगी और अवास्तविक भेद को यथा तथ्य रूपेण दिखाकर मुझे आप के ज्ञानालोक प्रवेश में आने से रोकती रहेगी, इस लिये हे प्राण! तू जल्दी आ, और आ कर इस भेद-भित्ति को अपने वज्र प्रहार से कण कण कर के उड़ादे, जिस से तू मैं, में बदल जाय और मैं तू में। हे करुणासागर! जब यौवन वन की सुशीतल मन्द मलयानिल की प्यारी अठ खेलियों में पड़ कर यह चंचल मन अपने अभीष्ट-पथ से विचलित होता जान पड़े, धन वैभव के प्रबल प्रताप से अपने आप को सर्वोपरि मानता हुआ दूसरों के अधिकारों को अपने गर्वित पैरों तले रौंदने लगे और मनुष्यत्व त्याग बैठे, अपने राज्य मद के प्रखर तेज से जनता को जलाने लगे, और विद्वत्ता के गाढे घमंड में आकर ईश्वरीय सत्ता के अस्तित्व में भी कुतर्क करता हो, उस समय आप आवें और भेद को मिटा कर अपनी पवित्र शरण देवें, क्योंकि मैं

और साथ यह नाम रूपात्मक संसार तेरा ही रूप है । इस लिये इसके अज्ञान को मिटा कर इसे अपने समान बनालो । भक्ति रस की सुमधुर चासनी देकर इसे मधुरतम कर दो जिस से इस का कड़ापन जाता रहे ।

प्रभो ! जल्द आओ और इस को अपनी पवित्र शरण में ले कर भक्ति रस के अगाध समुद्र में नुल्हा कर पावन पावनाना बना कर अपने में लय करलो ।

पं० लादूराम शर्मा जोशी (सीकर)

पतिव्रता का प्रभाव

(ले० श्रीमती सूरज देवी)

सच्चिदानन्द आनन्द कन्द परमात्मा को स्मरण करके कुछ पतिव्रता धर्म पर विचार करते हैं । स्त्रियों के अन्य धर्मों में यह मुख्य धर्म है स्त्रियें पातिव्रत्य के प्रभाव से कठिन से कठिन कार्य को सिद्ध कर सकती हैं । पति भक्ति में भी वही प्रेम भक्ति होती है जो श्री गुरुभक्त भगवद्भक्तों में होती है। पातिव्रत्यके प्रभाव से स्त्रियें असाधारण कार्य कर सकती हैं यथा सूर्योदय का रोकना जीवन की धारा टूटी हुई को जोड़ना जैसा कि पतिव्रता साध्वी सावित्री ने आदर्श बन कर दिखलाया है कि पतिव्रता में कितना प्रभाव होता है। अतः हम भी पाठकों के समक्ष में साध्वी सावित्री का आख्यान उपस्थित करते हैं। पाठक देखें पतिव्रता का प्रभाव ।

प्राचीन समय में मद्र देश में एक अश्व-पति राजा राज्य करता था । परन्तु भाग्य वश उसके कोई सन्तान नहीं थी अतः उसने सन्तानोत्पत्ति के अर्थ पूर्ण जितेन्द्रिय बन सत्य आचरण करते हुये गायत्री का जप किया सावित्री देवी ने प्रसन्न होकर धर्मात्मा राजा को दर्शन दिया और कहा कि हे राजन् ! क्या इच्छा है राजाने सन्तान की इच्छा प्रकट की । तब सावित्री ने कहा कि हे राजन् मैंने प्रथम ही आप की इच्छा समझ ब्रह्मा जी से कहा

था अतः तेरे सर्व गुण सम्पन्न पुत्री होगी यह ब्रह्माजी की आज्ञा से कह रही हूं। इस में आपको कुछ उत्तर नहीं देना चाहिये। तदनन्तर सावित्री देवी अन्तर ध्यान होगई। पश्चात् रानी के एक अत्यन्त सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई। और वह दिनो दिन चन्द्रमा को भांति बढने लगी उसके पूर्ण वयस्यका होनेपर राजा ने कहा कि हे पुत्री! मैंने सर्वत्र वर ढूंढा परन्तु तेरे योग्य मुझे कोई वर न मिला। अतः हे पुत्री! तुम स्वयं सर्वत्र भ्रमण करके कोई वर पसन्द करलो। पिता की आज्ञा पा बूढे मंत्रियों तथा दासियों के सहित राजपुत्री सावित्री घूमने निकली और वह बन उपवन तीर्थ नगर तथा ऋषियों के आश्रम में गई।

एक दिन मद्र देश के राजा अश्वपति अपनी सभा में नारद जी सहित बैठे थे उसी समय सावित्री अपने बूढे मंत्रियों के सहित आ पहुंची और पिता तथा नारदादि को प्रणाम किया। आशीर्वाद के अनन्तर पिता ने पूछा पुत्री वर ढूंढ आई हो। पुत्री ने पिताज्ञा पाकर कहा कि शाल्व देश का असहाय राजा जो कि प्रज्ञाचक्षु था उस के पुत्र को बालक देख कर अन्य किसी राजाने उसे युद्ध में हरा दिया। वह राजा अपनी रानी तथा पुत्र सहित वन में रहता है। उसके सत्यवान् नामक धर्मात्मा सुशील पुत्र को मैंने वरा है। सावित्री की वाणी सुन कर नारद जी ने कहा कि अरे रे हे राजन्! सावित्री ने धर्मात्मा सत्यवान् को वरा है सो ठीक नहीं किया वह सत्य बोलता है अतः ऋषियों ने उस का नाम सत्यवान् रक्खा है। राजा ने पूछा कि हे नारदजी! क्या सत्यवान् धर्मात्मा जितेन्द्रिय बलवान, दानी, प्रियदर्शन नहीं है। तब नारदजी ने कहा कि नहीं उस में यह सब गुण हैं परन्तु एक दोष ऐसा है जिस के कारण वे सब गुण फीके लगते हैं और यह दोष उद्योग करने पर भी नहीं छूट सकता। वह दोष यह है कि आज से एक वर्ष पीछे सत्यवान् की आयु पूरी हो जायगी और वह मर जायगा यह सुन कर राजा ने सावित्री से कहा कि तू किसी और को वरले क्योंकि भगवान् नारदजी ने मुझ से कहा है कि सत्यवान् की आयु एक वर्ष की है यह सुनते ही सावित्री ने कहा:—

सकृदंशो निपतति सकृत् कन्या प्रदीयते।
सकृदाह ददातीति त्रीण्येतानि सकृत् सकृत्॥

अंश अर्थात् पिता आदि के धन का विभाग का निर्णय करते समय चिट्ठी एक ही बार डाली जाती है, कन्या का दान भी एक बार ही किया जाता है और मैं देता हूं ऐसा भी एक ही बार कहा जाता है ये तीनों बातें एक ही बार की जाती हैं।

दीर्घायुरथवाल्पायुः,
सगुणो निर्गुणोऽपि वा।

सकृद्द वृतो मया भर्त्ता,
न द्वितीयं वृणोम्यहम् ॥
मनसानिश्चयं कृत्वा,
ततोवाचमिधीयते ।
क्रियते कर्मणा पश्चात्,
प्रमाणं मे मनस्ततः ॥

सत्यवान् दीर्घायु हो वा अल्पायु गुणों वाला हो अथवा गुणों से रहित हो मैं एक बार वर चुकी हूं अब दूसरे किसी को नहीं वरूंगी। मनुष्य पहिले कर्म को मन से निश्चय करता है फिर वाणी से कहता है फिर कर्म से बर्ताव में लाता है अतः इस बात में मेरा मन ही प्रमाण है। सावित्री के इस कथन को सुनकर नारदजी ने कहा कि हे राजन्! सावित्री की बुद्धि स्थिर है यह सत्य धर्म से विचलित न होगी अतः सत्यवान् से ही विवाह कर दीजिये। राजा ने कहा कि आपकी आज्ञा मेरे हित की है और अनुलंघनीय है क्योंकि आप मेरे गुरु हैं। नारदजी आशीर्वाद देकर चले गये राजा सब विवाह की सामग्री एकत्रित करके द्युमत्सेन के आश्रम को चल दिये।

राजा अश्वपति ने वहां पहुंच कर अपना वृत्तान्त सुनाया कि मैं सावित्री को आपकी पुत्र वधु बनाना चाहता हूं। राजा द्युमत्सेन ने ब्राह्मणों को बुला शुभ मुहूर्त में विवाह कर दिया। सावित्री ने अपने पिता के चले जाने पर राजसी वस्त्र उतार वल्कल तथा गेरुये वस्त्र पहन लिये और सेवा, मधुरभाषण जितेन्द्रियता, सत्यभाषण, तथा टहलसे अपने श्वसुर, सासु, पति तथा अन्य आश्रम वासियों को प्रसन्न रखने लगी। बहुत समय बीतने पर जब सत्यवान् की आयु के तीन दिवस शेष रहे तब उसने व्रत किया और चौथे दिन सास श्वसुर की आज्ञा ले अपने पति के साथ जंगल में लकड़ी लाने के निमित्त गई। वहां सत्यवान् वृक्षारूढ होकर लकड़ी काटते २ नीचे उतरे और कहा कि हे प्रिये! आज मेरे शिर में दर्द होता है चक्कर आता है ऐसा कह कर सावित्री की जंघा पर शिर रख कर सो गये सावित्री भी नारद जी के कहे हुये समय के क्षण मुहूर्त का विचार करने लगी। किंचित काल के पीछे सावित्री ने रक्त वस्त्र धारण किये हुवे एक तेजस्वी पुरुष को आते देखा। उस को देख कर सावित्री का हृदय कांपने लगा। वह अपने पति के शिर को धीरे से भूमि पर रख कर खड़ी हो गई और पूछा महाराज आप कौन हैं? रक्त वस्त्र धारी पुरुष ने कहा कि मैं यमराज हूं। मैं तेरे पति को लेने आया हूं। यह कह कर वह अंगुष्ठ मात्र पुरुष को निकाल कर चल पड़ा। सावित्री भी विलाप करती हुई यमराज के पीछे चली। यमराज ने कहा कि तुम पीछे लौट जाओ। सावित्री ने कहा कि:—

यत्र मे नीयते भर्त्ता स्वयं वा यत्र गच्छति ।
मया च तत्र गन्तव्यमेष धर्मः सनातनः ॥
तपसा गुरु भक्त्या च भर्तुस्नेहाद्व्रतेन च ।
तव चैव प्रसादेन न मे प्रतिहता गतिः ॥
प्राहुः साप्तपदं मैत्रं बुधास्तत्त्वार्थ दर्शिनः ।

हे महाराज ! आप जहाँ पर मेरे पति को लिये जाते हैं अथवा वह अपने आप जहां जाते हैं तहाँ ही मुझे भी जाना चाहिये यह पतिव्रताओं का सनातन धर्म है । मैं थकूंगी नहीं क्योंकि तपस्या, गुरुभक्ति पति का प्रेम, व्रतों के आचरण और आप के अनुग्रह से मेरी गति नहीं रुक सकती । इस कारण से मैं चलने में जरा भी नहीं थकूंगी।

यमराज बोले कि स्वर अक्षर व्यंजन और युक्ति भरे कारणों वाली तेरी वाणी को सुन कर मैं प्रसन्न हुआ हूं अब तू यहां से पीछे को लौट जा और जाने से पहिले हे पवित्र शरीर वाली स्त्री इस सत्यवान् के शरीर के सिवाय चाहे सो वर मांगले मैं तुझे सब प्रकार के वर दूंगा । सावित्री बोली, कि मेरे श्वसुर अपने राज्य से भ्रष्ट हो वन में आकर रहते हैं और इस समय आश्रम में रह कर अन्धे हो गये हैं वह राजा आपकी कृपा से सआखे हो जांय । यम राज ने कहा कि हे पवित्र आचरण वाली स्त्री ! तूने जैसा वर मांगा है तैसा ही वर मैं तुझे देता हूं तूने जैसा वर मांगा है ऐसा ही होगा, अब तुम लौट कर अपने आश्रम में जाओ जिस से तुम्हें परिश्रम न हो ।

श्रमः कुतो भर्तृ समीपतो हि मे ।
यतो हि भर्ता मम सा गतिर्ध्रुवा ॥
यतः पतिं जेष्यसि तत्र मे गतिः ।
सुरेश्च भूयश्च वचो निबोध मे ॥

सावित्री बोलि कि पति के पास रहने पर मुझे परिश्रम कैसे हो सकता है । मैं चाहती हूं कि जहां मेरे भर्त्ता हों तहां ही मेरी अविचल गति हो, हे देव ! तुम मेरे पति को लेकर जहाँ जाते हो तहाँ ही मैं भी जाऊंगी, तुम मेरी प्रार्थना को फिर सुनो ।

सतां सकृत् सङ्गतमीप्सितं परं ।
तत्र परं मित्रमिति प्रचक्षते ॥
नचा फलं सत्पुरुषेण संङ्गतं ।
ततः सतां सन्निवसेत् समागमे ॥

पण्डित कहते हैं कि सज्जनों के साथ एक बार भी समागम हो, ऐसे सौभाग्य को सब ही चाहते हों, तिस में भी उन के साथ प्रेम भाव होना यह परम् इच्छित विशेष सौभाग्य है, सत्पुरुषों का समागम कभी भी निष्फल नहीं होता है, सदा सत्पुरुषों के समागमों में ही रहना चाहिये । तदनन्तर यमराज बोले कि हे सावित्री ! तूने जो बात कही यह बात मुझे बड़ी ही अच्छी लगती है, यह बात तूने विद्वानों की बुद्धि को बढ़ाने वाली युक्तियों से भरी हुई कही है, इस कारण अब तू सत्यवान के जीवन के सिवाय दूसरा और कोई

वर मांगले सावित्री ने कहा कि मेरे ससुर जी का राज्य पहिले शत्रुओं ने छीन लिया है, वह राज उन को फिर मिल जाय तथा वह अपने धर्म का त्याग न करें यह वर मैं आप से मांगती हूं यमराज ने तथाऽस्तु कह कर सावित्री से कहा कि अब तुम अपने घर को लौट जाओ ।

सावित्री ने कहा, कि हे यमराज ! तुम इस सब प्रजा को नियम में रखते हो और धर्म के अनुसार दण्ड देने के अनन्तर उनको कर्मों के फल भी देते हो इस लिये हे देव ! तुम्हारा नाम यम पड़ा है और इस कारण ही मैं आप से जो बात कहती हूं उस को सुनिये।

अद्रोहः सर्व भूतेषु कर्मणा मनसा गिरा ।
अनुग्रहश्च दानश्च सतां धर्मः सनातनः ॥

हे यमराज ! कर्म से, मन से, वाणी से किसी का द्रोह नहीं करना चाहिये किन्तु मन वाणी और काया से सब के ऊपर अनुग्रह करना चाहिये शक्ति के अनुसार दान देना चाहिये यह सत्पुरुषों का सनातन धर्म है ।
एवं परम्परायश्च लोकोऽयं मनुष्याः शक्तिपेशला
सन्तस्त्वारिष्वपि मित्रेषु दयाँप्राप्तेषु कुर्वते ॥

और इस संसार में भी अधिक तर ऐसी रीति है, मनुष्य भी अपनी शक्ति भर कोमल हो सके हैं, परन्तु सत्पुरुष तो अपने यहां आये हुये शत्रुओं के ऊपर अनुग्रह करते हैं।

यमराज बोले कि हे कल्याणी ! प्यास से व्याकुल हुये मनुष्य को जैसे पानी आनन्द देता है तैसे ही तेरी कही हुई मीठी बातों को सुन कर मेरा अन्तःकरण सन्तुष्ट हुआ है, इस लिये तू फिर भी सत्यवान् के जीवन को छोड़ कर और जो भी वर चाहे मांगले। सावित्री बोली कि मेरे पिता राजा अश्वपति पुत्र हीन हैं, इस लिये उनके कुल की वृद्धि करने वाले सौ औरस पुत्र हों यह तीसरा वर मांगती हूं । यमराज ने पुनः तथास्तु कह कर कहा कि अब तू यहां से पीछे को लौट जा क्यों कि अब तू बहुत दूर आपहुंची है ।

न दूरमेतन्मम भर्तृ सन्निधौ ।
मनो हि मे दूरतरं प्रधावति ।
अथ व्रुवन्नेव गिरं समुद्यतां ।
मयोच्यमानं शृणु भूय एव च ॥

सावित्री बोली कि मैं पति के पास खड़ी हूं इस लिये मुझे यह सब दूर नहीं मालूम होता, मेरा मन तो इस से भी अधिक दूर के स्थान में को दौड़ रहा है आप मेरे बचनों को फिर सुनिये ।

विवस्वतस्त्वं तनयः प्रताप वां-,
स्ततो हि वैवस्वत उच्यसे बुधैः ।
समेन धर्मेण चरन्ति ताः प्रजा-
स्ततस्तवेहेश्वर धर्म राजता ॥

तुम विवस्थान के प्रतापी पुत्र हो इस

लिये विद्वान् आप को वैवस्वत कहते हैं और तुम शत्रु तथा मित्र आदि का पक्षपात छोड़ कर मनुष्यों को शिक्षा करते हो इस कारण सब प्रजा मर्यादा में रह कर धर्माचरण करती है, इस से हे ईश्वर! तुम धर्मराज नाम से प्रसिद्ध हो।

आत्मन्यपि वि:वास स्तथा भवति सत्सु यः।
तस्मात्सत्सु विशेषेण सर्वः प्रणयमिच्छति॥

इसके सिवाय मनुष्य संसार में जितना विश्वास अपने आप का नहीं करता है, उतना विश्वास सत्पुरुषों का करता है इसीलिये ही सब मनुष्य सत्पुरुष के पास प्रार्थना करते हैं।

सौहृदात्सर्व भूतानां विश्वासो नाम जायते।
तस्मात् सत्सु विशेषेण विश्वासं कुरुते जनः॥

इस के सिवाय सब प्राणी भी सच्चे हृदय का प्रेम देख कर उस का विश्वास करते हैं और ऐसा प्रेम सत्पुरुषों में देखने में आता है, इस कारण मनुष्य सत्पुरुषों का अधिक विश्वास करते हैं।

यम राज बोले कि-हे श्रेष्ठ स्त्री! तूने जो बात कही यह बात मैंने तेरे सिवाय दूसरे किसी से भी नहीं सुनी, मैं तेरे इस कथन से प्रसन्न हुआ हूं और तुझ से कहता हूं कि तू सत्यवान् के जीवन के सिवाय और चाहे सो चौथा वर मांगले और फिर अपने आश्रम को लौट जा। सावित्री बोली कि-मेरे और सत्यवान् के समागम से बलवान् तथा पराक्रमी सौ औरस पुत्र हों और उन से मेरे वंश की वृद्धि हो, यही चौथा वर मैं आप से मांगती हूं यमराज ने कहा कि-हे अबले! तेरे बलवान् पराक्रमी और प्रेम उत्पन्न करने वाले सौ पुत्र होंगे अब हे राज कुमारी! तू यहां से पीछे को लौट कर अपने आश्रम में चली जा।

सतां सदा शाश्वत धर्म वृत्तिः
सन्तो न सीदन्ति न च व्यथन्ति।
सतां सद्भिर्ना फलः संगमोऽस्ति
सद्भ्यो भयं नानुवर्तन्ति सन्तः॥
सन्तो हि सत्येन नयन्ति सूर्यं।
सन्तो भूमिं तपसा धारयन्ति॥
सन्तो गतिर्भूत भव्यस्य राजन्।
सतां मध्ये नाव सीदन्ति सन्तः॥

सावित्री बोली, कि-सत्पुरुष सदा दृढ़ता के साथ सनातन धर्म का पालन करते हैं, और सत्पुरुष जो बात कहते हैं उसको सब प्रकार से पूरी करते हैं। परन्तु वचन देकर फिर उसका पछतावा वा दुःख नहीं करते हैं, सत्पुरुषों का जो सत्पुरुषों के साथ समागम होता है वह निष्फल नहीं जाता है तथा सत्पुरुष सत्पुरुषों से डरते भी नहीं हैं। और हे राजन्! सत्पुरुष अपने सत्य के प्रभाव से सूर्य को भी अपने समीप बुला सक्ते हैं। तपस्या के प्रभाव से पृथ्वी को भी धारण कर कर सक्ते हैं। तथा सत्पुरुष भूत भविष्यत् का भी गति अर्थात् आधार रूप हैं इस कारण सत्पुरुष सत्पुरुषों में रहने

से दुःखी नहीं होते हैं।

आर्यजुष्टमिदं वृत्तमिति विज्ञाय शाश्वतम् ।
सन्तः पदार्थ कुर्वाणा नावेक्षन्ति परस्परम् ॥

इस सनातन काल के व्यवहार के अनुसार ही श्रेष्ठ पुरुषों का व्यवहार होता है, ऐसा जान कर सत्पुरुष परोपकार करते हैं। परन्तु उपकार करते समय प्रत्युपकार की ओर दृष्टि नहीं रखते। यमराज सावित्री के ऐसे गम्भीर भाषण से बहुत प्रसन्न हुए और सावित्री से कहने लगे कि सावित्रे! तू मेरे से अनुपम वर मांगले। सावित्री ने कहा कि हे यमराज! आपने मुझे सत्यवान् से ही पुत्र उत्पन्न होने का वर दिया है अतः यह आपका दिया हुवा वर बिना सत्यवान् के जीवित हुए व्यर्थ है। अतः मैं वर मांगती हूं कि मेरे पति सत्यवान् जीवित होजांय।

न कामये भर्तृविना कृता सुखं
न कामये भर्तृ विना कृता दिवम् ।
न कामये भर्तृ विना कृता श्रियं
न भर्तृ विना व्यवसामि जीवनम् ॥

मुझे पति के विना सुख की इच्छा नहीं है, पति के विना स्वर्ग में जाना नहीं चाहती, पति के विना धन नहीं चाहती तथा में पति के विना जीवन भी नहीं चाहती।

पाठक गण! सावित्री के ऐसे कोमल तथा सारगर्भित वचनों को सुन कर यमराज ने सत्यवान् को अपने पाश से मुक्त कर दिया। देखिये यह सब पतिव्रता के सत्य तथा निष्ठा का ही कारण था जो विधि को भी पतिव्रता के समक्ष में शिर झुकाना पड़ा। धन्य है सावित्री यदि तुम्हारे समान इस आर्यवर्त में दो चार भी मातायें तथा बहनें होजांय तो हम भारतीयों का सहज ही में कल्याण हो जाय।

शाश्वत जीवन।

(गताङ्क से आगे)

उस रात को मुझे ऐसी गूढ़ निद्रा आई जैसे कोई बच्चा थक कर सो गया हो। दूसरे दिन मैं और मेरी सखी श्रीमती कृष्णा जी, (मैं इनको बहन जी करके बुलाया करती थी)

विदा हुए। उन को पिता ने स्टेशन करांची पर उन को लेने आना था इस लिए उन्होंने केवल एक नौकर अपने साथ लिया। मेरा भाई, (मेरा अपना भाई तो कोई नहीं था चचा के दो पुत्र थे) उन में से एक मेरे साथ चला। मैं और कृष्णा जी जनाने कमरे में बैठ गये। और उसमें उस दिन और कोई नहीं आया कृष्णा जी बहुत ही हंस मुख थी। ईश्वर बहुतों को ऐसा स्वभाव दे देता है। जब हम कुछ दूर निकल गये तो वह कहने लगी मेरा विचार तो यह है कि तुम जल्दी ही आजाओगी। बीमार का सङ्ग और वह भी ऐसी बीमार जो अपने मन से दिन दिन नई बीमारी पैदा करती है। भला कब तक सह सकेगी। राय साहब लच्चीदास भी बीमार होंगे, उन की भी शकल बीमारों जैसी है। परन्तु इन्दुमती के तो केवल बहाने ही बहाने हैं। मैंने कहा। "स्नायु विकार भी तो कोई होता ही है। हिस्टेरिया आदिक बीमारियां इसी से हो जाती हैं। और वह बड़ी दुःख दाई होती है"। श्रीकृष्णा जी मुस्करा कर बोली कि ऐसी बीमारियां बहुत कुछ मनोकल्पित होती हैं। स्त्री हो या पुरुष हो उन को रोक सकता है। मेरा अपना विचार तो यह है कि ऐसे लोग अपनी खातर कराने के लिए बीमार बन बैठते हैं यह बात उन की बहुत कुछ ठीक थी। इस लिये मैंने उन को रोका। थोड़ी देर तक हम चुप बैठी रहीं फिर एक स्टेशन पर पहुंची जहां गाड़ी देर तक ठैरी रही। कृष्णा जी कुछ देर तक तो प्लेट फारम पर भीड़ को देखती रही फिर एका एकी मेरी ओर हो कर कहने लगी मुझे तो कोई संदेह नहीं कि सृष्टि के आदि में हम सब पशु पत्ती थे जो अपने आहारार्थ एक दूसरे का शिकार करते रहते थे। यह शिकार का स्वभाव अब भी इस जाति से नहीं गया। मैंने हंस कर कहा "बहन जी, आप तो ऐसी शिकारन नहीं दिखाई देतीं। उन्होंने उत्तर दिया, मैं इस समय अपना विचार नहीं कर रही थी। मैं तो केवल एक स्त्री हूं। तुम—हां तुम भी जल्दी स्त्री हो जावोगी, अभी थोड़ा सा बालापन है। तो भी तुम में हमसे भी कोई अधिक भाव है। फिर मेरी ओर बड़े मोह भरे नेत्रों से देख कर बोली मैं चाहती हूं परन्तु कभी २ मैं तुम्हें समझ नहीं सकती कि तुम क्या हो। भला मेरी और अपनी बात जाने दो, इन पुरुषों को तो जरा देखो, यह जो सामने आ रहा है। इसका मुख ऐसा है जैसा गीध का हो मुख लालची नेत्र कठोर और नाक टेढी जैसी सर्व भक्षी चोंच होती है। यह दूसरा शूकर जैसा स्वरूप देखना अपनी दो टांगों पर चलना बुरा लगता है। ईश्वर ने तो इसे चार टांगों पर चलने के लिये हंस बनाया था, और नाक तो ऐसी बनाई है कि सदा कूड़े को खोदती रहे। मुझ से

रहा न गया, और मैं खिलखिला कर हंस उठी, और बोली, बहनजी, तुमतो दोष ही दोष देखती हो। इस पर वह कहने लगी, नहीं मैं दोष नहीं देखती परन्तु जहां रूप साहश्य दिखाता हो तो अपनी आखें कैसे बन्द करलूं कहीं २ तो यह साहश्य इतना अधिक होता है कि देख कर जी घबरा जाता है। तुम्हारा तो यह विचार न है, कि जो पुरुष दुष्ट कर्म करते हैं अथवा बुरी बातें सोचते रहते हैं उनकी अधोगति उनको पुनः पशु की योनि में ले जाती है। मैंने उत्तर दिया मेरा विचार तो ऐसा ही है, परन्तु कृष्णाजी ने मेरी बात काट दी और बोली कि तुम मानोगी नहीं, परन्तु मैं कई ऐसे स्त्री और पुरुष देखती हूं जिनकी मनुष्य देह में ही अधोगति का आरम्भ हो गया है। उन्हें देख कर मेरा कलेजा दहल जाता है। मैं बहन जी का भाव समझ सकती थी, मेरा अपना अनुभव भी ऐसा ही था। मैं आंखों से देख चुकी थी और मुझे संसार की अल्पधीमता और कर्मों की निष्फलता देख २ कर जितना शोक होता था मेरा हृदय ही जानता था। मनुष्य का धर्म है कि वह आगे चले और उन्नति करे। परन्तु जब गिरना ही चाहता है तो फिर न तो कोई सांसारिक न दैवी शक्ति उसको रोक सकती है यदि वह ऐसा शोचनीय संकल्प करले तो उसे कौन सुधार सकता है प्रथम वह किसी सदुपदेश पर ध्यान ही नहीं धरता फिर क्या उसकी स्वेच्छा जनित पापों का फल निवारण करने के लिये ईश्वर अपने नियम और धर्म का प्रचार रोक देगा। यदि कोई कुतब मीनार से कूद कर आत्म घात का संकल्प करले तो क्या आकर्षण शक्ति अपना धर्म छोड़ देगी। नहीं इसी प्रकार आत्मिक सत्ता में मनुष्य बड़े उच्च पद पर पहुंच कर मतिमान् बुद्धिमान् होकर अपना कर्म धर्म भूल जाते हैं और अपने स्थान से गिर पड़ते हैं। फिर उनके नाश को कौन रोक सकता है। यदि पुरुष अपनी मति अनुसार योग्य और अयोग्य को पहचान कर भी अयोग्यता के अनुगमन का संकल्प कर लेता है तो उसको शुभ फल कैसे मिल सकता है। कहीं कांटे बोकर भी पुष्प खिला करते हैं? मेरा और कृष्णाजी का इन्हीं बातों पर कई बार पहले भी सम्वाद हो चुका था। हम एक दूसरे की मति को जानती थी। इसलिये उस समय इस प्रसंग को और नहीं चलाया। समय बीत गया रात्री जाने पर हम सो गये। लाइन रास्ते में बदलती थी, परन्तु हमारी गाड़ी कट कर दूसरी लाइन पर लगा दी गई। और हमारी निद्रा में विघ्न नहीं पड़ा। गाड़ी प्रातः काल करांची पहुंची, वहां उठ कर पहले हम दोनों ने हाथ मुंह धोये। नोकर ने आकर बिस्तरा बांधा और असबाब ठीक किया। थोड़ी दूर आगे चल कर सूर्य भगवान् ने भी दर्शन दिये॥

क्रमशः

वेदान्त का विचार।

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्त्ति भेद विभागिने।
व्योमवत् व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्त्तये नमः॥
अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्चते।

अध्यारोप और अपवाद से निष्प्रपञ्च ब्रह्म प्रपंच को प्राप्त हो जाता है। शुद्ध सत्व गुण सहित माया ईश्वर का कारण शरीर है। मलिन सत्वगुण सहित अविद्या अंश जीव का कारण शरीर है। उत्तर शरीर के आरम्भक पंच सूक्ष्म भूत अन्तःकरण चतुष्टय पंच प्राण, दशेन्द्रियें, जीव का सूक्ष्म शरीर है सम्पूर्ण जीवेंके के सूक्ष्म शरीर मिल कर ईश्वर का सूक्ष्म शरीर है। सम्पूर्ण स्थूल ब्रह्माण्ड ईश्वर का स्थूल शरीर है। जीव के व्यष्टि स्थूल शरीर प्रसिद्ध हैं। आभास सहित अन्तःकरण की वृत्ति इन्द्रिय द्वारा निकस कर घटादि विषय को प्रकाशती आभाससहितवृत्तिरूप, तिस का ज्ञान, तथा आभास सहित अन्तःकरण रूप ज्ञाता इन तीनों को साक्षि प्रकाशै है। ज्ञाता; ज्ञान, ज्ञेय ध्याता ध्यान, ध्येय, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, इस त्रिपुटी का साक्षि से प्रकाश होता है। अन्तःकरणोपहित चैतन्य सर्व के ज्ञान का अधिष्टान है। रज्जुसहित चेतन सर्प का अधिष्ठान है। रज्जू के समीप प्राप्त जो अन्तः करण, इदमाकार वृत्ति, उस में स्थित चेतन के आश्रित अविद्या का सर्पाकार ज्ञानाकार परिणाम को प्राप्त होती है अयं वृत्ति उपहित चेतन में स्थित अविद्या का तमोगुण अंश सर्प का उपादान है उसमें स्थित सत्वगुण अंश सर्प के ज्ञान का उपादान कारण है। सर्प उसके ज्ञान की वृत्ति उपहित चेतन अधिष्ठान है। वृत्ति उपहित चेतन साक्षि है इससे ज्ञान का आश्रय बनै है रज्जू का जब साक्षात्कार होता है तब रज्जू चेतन वृत्ति चेतन दोनों एक होते हैं। इससे रज्जू के ज्ञान से सर्प और उसके ज्ञानकी निवृत्ति बनती है। जहां एक रज्जू में दश पुरुषों को किसी को सर्प, किसी को दण्ड, माला, भूदराड़, जलधारा इत्यादि भिन्न २ प्रतीत होती हैं वा सब को सर्प ही प्रतीत होता है जहां पुरुष को रज्जू का साक्षात्कार होता है उसकी वृत्ति चेतन में कल्पित अध्यास की निवृत्ति होती है। जिस को रज्जु ज्ञान नहीं होता है उसके अध्यास की निवृत्ति नहीं होती

इससे वृत्ति चैतन ही कल्पित का अधिष्ठान है। रज्जु आदिक विषय उपहित चेतन नहीं। जिसकी वृत्ति चेतन में जो पदार्थ कल्पित है सो उसको ही प्रतीत होता है अन्य को नहीं। स्वप्न के पदार्थ, उनके ज्ञान, का भी अन्तः करण उपहित साक्षी है अधिष्ठान है। बाह्य सूर्यादिक विषय और उनके ज्ञान की वृत्ति उपहित साक्षि अधिष्ठान है। जाग्रत के पदार्थ और तिन का ज्ञान दोनों साथ ही उत्पन्न होते हैं और साथ ही नष्ट होते हैं। जैसे स्वप्न के पदार्थ क्षण में उत्पन्न होते हैं और अविद्या से चिर काल में प्रतीत होते हैं। जैसे मेरे पुत्र हुआ मेरी गौ ने बच्छा दिया ऐसे जाग्रत के पदार्थ कार्य कारण भाव सब कल्पित हैं। अनिर्वचनीय उपजते हैं। पूर्व दृष्ट सर्प का स्मृतिज्ञान माने, सन्मुख रज्जु देश में भासाने तो पुरुष को भागना नहीं चाहिये। स्मृति और अनुभव दोनों इकट्ठे नहीं रह सकते अध्यास का उपादान अविद्या, निमित्त पूर्व जनके संस्कार अनात्म शरीरादिक में बुद्धि (उलटा ज्ञान) अध्यास का रूप है।

शारीरिक भाष्य में कहा है कि अविद्योपहित जीव नाम शुद्ध चैतन्य का प्रतिबिम्ब मिथ्या भ्रान्ति से आप को जीव मानता है। अविद्या की उपाधि से समस्त संसार मुक्ति पर्यन्त कल्पा रक्खा है। ब्रह्म ज्ञान से अविद्या का नाश होने पर जीव रूप भ्रान्ति का दूर होना ही मुक्ति है। सर्व अनर्थों की निवृत्ति परमानन्द की प्राप्ति इसी मुक्ति का लक्षण है। घट गत जल में जो प्रतिबिम्ब है सो जल के दूर होने से नाश हो जाता है। फिर यह नहीं कहा जाता कि प्रतिबिम्ब कहां गया। प्रतिबिम्ब के नाश होने न होने में सूर्य कुछ और प्रकार का नहीं हो जाता। वेदान्ती कहते हैं कि यह जगत अज्ञान से कल्प रक्खा है स्वप्नवत मिथ्या है जैसे स्वप्न में एक स्त्री के साथ एक समय दस पुरुष संग करें दसों का सच्चा है विचारने से झूठा है।

देखिये सुनिए गुणिए मन माहीं।
मोह मूल परमार्थ नाहिं॥

एक ब्रह्म में कल्पित स्वर्ग बैकुण्ठादि भ्रान्ति काल में सच्चे हैं किन्तु परमार्थ से झूठे हैं। देहादि से परे आत्मा को जानना असंग नित्य मुक्त अपने को निश्चय करना यह ज्ञान है। जिस ने गुरु शास्त्र से सुन कर यह निश्चय कर रक्खा है कि कोई ब्रह्म है, आप को निश्चय नहीं किया कि मैं ब्रह्म हूं यह परोक्ष ज्ञान गुरु शास्त्र पूर्वक जिस को है सो ज्ञान बुद्धि पूर्वक उस के किये हुए समस्त पापों को अग्निवत् भस्म कर देता है। अपरोक्ष ज्ञान गुरु शास्त्र पूर्वक जिस को है सो ज्ञान मूला ज्ञान सहित समस्त संसार को दूर कर देता है। पुनः उस का जन्म नहीं होता वह निरतिशयानन्द को प्राप्त होता है।

अविद्यकं शरीरादि दृश्यं बुदबुदवत् क्षरम्।

एत द्विलक्षणं विद्यात् अहं ब्रह्मेति निर्मलम् ॥
रज्जुसर्पवदात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं भवेत्
नाहं जीवः परमात्मेति ज्ञातंचेन्निर्भयो भवेत् ॥

चिद्रूप अंश निर्विकार होने से और चिदाभास मिथ्या होने से दोनों अधिष्ठान नहीं हैं। आभास, कूटस्थ और बुद्धि तीनों मिल कर ही जीव है। माया आभास शुद्ध चैतन्य मिल कर परमेश्वर कहलाते हैं।

ज्ञान भूमिः शुभेच्छाख्या प्रथमा समुदाहृता ।
विचारणा द्वितीया स्यात् तृतीया तनुमानसा ॥
सत्वापत्ति चतुर्थी स्यात् ततो संसक्ति नामका,
पदर्था भाविनी षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता ॥

चार साधन सम्पन्न तीव्र मोक्ष की इच्छा को शुभेच्छा कहते हैं। श्रवण, मनन विचार को विचारणा कहते हैं। तनु सूक्ष्म है मन है जिस में निदिध्यासन को तनुमानसा कहते हैं। यह तीनों साधन भूमि हैं। मैं ब्रह्म हूं ऐसा अपरोक्ष ज्ञान शुद्धान्तःकरण में जो होता है वह सत्वापति कहलाती है। असंसक्ति आत्मा में ही क्रीड़ा रति रहे। ब्रह्म से अतिरिक्त दूसरे की भावना न रहे वह पदार्थ भाविनी। तुर्यपद में योगी पहुंच जाय उसे तुर्यगा कहते हैं।

यथा स्वप्नमयो जीवो जायते म्रियतेऽपि च ।
तथा जीवा अमीसर्वे भवन्ति न भवन्ति च ॥
स्वप्नपाये यथा दृष्टे गन्धर्व नगर यथा ।
तदा विश्वमिदं दृष्टं वेदान्तेषु विचक्षणैः ॥
अस्य द्वैतेन्द्र जालस्य यदुपादान कारणम् ।
अज्ञानं तदुपाश्रित्य ब्रह्म कारणमुच्यते ।

इस द्वैत इन्द्र जाल रूप संसार का अज्ञानोपाधि वाला ब्रह्म कारण है।

यथा भवति बालानां गगनं मलिनं मलैः ।
तथा भवति अबुद्धानामात्मनि मलिनो मलैः ।
ईश एकोऽप्यनन्तश्चो नानामत निविष्टकैः ।
भिन्ने काचे यथा मूर्तिः भिद्यते वस्तुतो पृथक् ॥
उदक पात्र सहस्रेषु ज्योतिरेकाव भासते ।
तथैवात्मा सर्वत्र वस्तुतो भासते विभुः ॥

जैसे बालकों को आकाश मलिन प्रतीत होता है ऐसे ही अज्ञानियों को आत्मा। सर्वपर्तों करके एक ही आत्मा जाना जाता है। जैसे एक मूर्ति भिन्न काचों में पृथक् २ दीखती है। जैसे हजार घड़ों में एक ही सूर्य हजार प्रतीत हैं। ऐसे ही सम्पूर्ण देहों में एक ही आत्मा है।

एको देवः सर्व भूतेषु गूढः,
सर्व व्यापी सर्व भूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्व भूताधिवासः ।
सत्वाक्षिचेता केवलो निर्गुणश्च ॥

एक देव सर्व भूतों में छिपा हुआ है, सर्व व्यापि सब भूतों का आत्मा है कर्मों का अध्यक्ष है साक्षी है चेतन है केवल तथा निर्गुण है।

को देवो यो मनः सक्षीः प ते मे दृश्यतेमया ।
तर्हि देवस्त्वमेवासि एको देव इति श्रुतिः ॥

कौन देव है जो मन का साक्षी है मेरा मन मैंने देखा है अतःदेव तू है एक देव है यह श्रुति है॥

हस्तं हस्तेन सम्पीड्य दन्तै-र्दन्तान्विचूर्णयेच ।
अङ्गान्यङ्गैस्समाक्रम्य जयेदादौ स्वकं मनः ॥

हाथ को हाथों से सम्यक् भींच कर, दाँतों को दाँतों से पीस कर अंगों से अंगों को आक्रमण कर आदि में अपने मन को जीते ।

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्

पूर्वोक्त यह अमृत रूप ईश ही है, पहले ईश ही था अन्त में ईश ही शेष रहेगा। दक्षिण की ओर से और उत्तर की ओर नीचे और ऊपर भी वही विस्तृत अर्थात् फैला हुआ है। यह विश्व अति उत्तम ईश ही है॥

इति।

भक्ति के लक्षण

श्रीं सच्चिदानन्द आनन्द कन्द ब्रजचन्द बालमुकुन्द असुरारि वनविहारी भगवान् की प्राप्ति के लिये भक्ति मुख्य साधन माना है शेष सब साधन गौण माने हैं अनुभव से भी यही प्रतीत होता है कि जब तक आत्मा परमात्मा के साथ एक न हो जाय वा उस की इच्छा के आधीन न हो जाय तब तक जीवन में कोई भी आनन्द नहीं अपनी वासना सूक्ष्म हो व स्थूल किंचित् भी नहीं रहनी चाहिये केवल परमात्मा की इच्छा को परम इच्छा समझ कर उस को पालन और अपने मिथ्या अहंकार का उसमें विस्मरण करना यही अन्तिम पद है भगवत् को त्याग किसी वस्तु का आश्रय न लेना परंच तन मन प्राण और आत्मा को भगवत् से उत्पन्न हुवे जान और उसी के आधार समझ उसी में लीन कर देना यही जीवन का लक्ष्य है कोई कर्म करे वह भगवत् समर्पण हो सर्व संसारिक वासनाओं का त्याग विशेष कर काम का त्याग करना अतिशय गाढ प्रेम । अपनी सर्व वासनाओं के ऊपर भगवत् इच्छा का अधिकार स्थापित करना जितनी वासना फुरें सर्व भगवत् इच्छा से प्रेरित हों वा भगवत् इच्छा को पूर्ण करनी वाली हों उस के विरुद्ध कोई वासना न फुरने पावे हृदय में भगवत् प्रेम की निरन्तर ऐसी अजस्र धारा

बहती रहे जैसा गंगा का प्रवाह कभी एक क्षण भी हृदय भगवत् प्रेम से शून्य न रहे। और जैसे मीन के लिये जल ही जीवन होता है वैसे ही भक्ति मार्ग पर चलने वालों के लिये भगवत् प्रेम ही जीवन होता है ऐसे भक्ति योग द्वारा व्यवहार और परमार्थ में कुछ अन्तर नहीं होता श्रोत्रों से भगवत् के गुण श्रवण करना जिह्वा से उनके गुण कीर्तन करना हस्तों से पूजा और सेवा करनी पगों से उन के कार्य पूर्ण करने के अर्थ चलना जैसे तीर्थों में साधु दर्शनार्थ मुख से नाम उच्चारण करना और भगवत् कथा का पाठ करना नासिका से भगवत् चरणों से स्पर्श हुए पुष्पों की सुगन्धि लेनी इस प्रकार सर्वाङ्गों को भगवत् के अर्पण करना बुद्धि से ध्यान चित्त से स्मरण और अहंकार से भगवत् पर अपना मान करना इस प्रकार आत्मा से आत्मनिवेदन एवं भगवत् अर्पण करना ही जीवन का आधार है। सर्वत्र ही भगवत् के लिये व्याकुल होना भक्ति का मुख्य अंग है। भगवान् पद्म पुराण में अपनी भक्ति से अपने भक्तों की भक्ति उत्तम बताते हैं

मद्भक्ताः हि ये पार्था न मे भक्तास्तु मे मता।
मद्भक्तस्तु ये भक्ता तेमे भक्तस्तमोमता॥

भजन।

नट ज्यूं नाच गये कितने।
दाता शूर सति सिध साधक राव
रंक जितने॥ टेक॥

रावण कुंभ करण से योधा बहुतक कौन गिने। बहुतक इक छत राज करत थे पूजत लोग जिने॥ १॥

बहुतक भोगी नाना विध से करते भोग विलास। बहुतक तपसी बन के वासी शिर पर उपजी घास॥ २॥

बहुतक ऋषि मुनि दुर्वासा से देते अडिग शराप। बहुतक ज्ञानी हरि हो बैठे कहते आप ही आप॥ ३॥

हम हैं याचक नाचन आये यह नहीं अपनादेश। चरण दास सुखदेव दयासूं फिर नहीं काछु भेष॥ ४॥

भजन।

बन में बाजै बांसरिया कान्हड़ो धेनु चरावे
ऐसी तो बजावे मेरे चित्त को चुरावे,
मैंने सूती ने जगावे मन हर लीना।
सन्मुख जावे मेरी नणद हठीली,
घर धमकावे सासरियां॥१॥
सुन ब्रज नारी कहूं सब के जो अगारी,
मेरी हया जो उतारी कारी नागरियां।
नन्द को अमानो दधि छीन छीन खानो,
मेरी रोकी डागरियां॥ २॥

बंशी की टेर से हिजूर से उठा हैं,
मोर से कहुक रहे काहू बन में।
सुनत सुनत मेरा हियड़ा जो लरजे,
कसके पांसरियां ॥ ३ ॥
पोरी जो मंगाई जाकी मुरली जो बनाई,
जाहि ऐसी पत राखी जैसी चातुरियां
फूक तो लगाई फूले राम दे अघाई,
हर ले गई सांवरियां ॥ ४ ॥

भजन।

राणा जी मैं गिरधर के घर जाऊं ॥ टेक ॥
गिरधर म्हारो सांचो प्रीतम देखत रूप लुभाऊं।

रैन पड़ै तब ही उठ जाऊं भोर भये उठआऊं। रैन दिना वांके संग में खेलूं ज्योंरीझै त्योंही रिझाऊं ॥ १ ॥

जो वस्त्र पहरावे सोई पहरूं जो दे सो ही खाऊं। मेरी उन की प्रीति पुरानी उन बिन पल न रहाऊं ॥ २ ॥

जहां बैठावे तित ही बैठूं बेचे तो बिक जाऊं। जन मीरां गिरधर के ऊपर बार बार बलि जाऊं ॥ ३ ॥

भजन।

अब नहीं बिसरूंगी म्हारे हिरदे लिख्यो हरि नाम। म्हारे सतगुरु दियो बताय अब नहीं बिसरूंगी ॥ टेक ॥

मीरां बैठी महल में ऊठत बैठत राम। सेवा करस्यां साधु की म्हारे औरन दूजो काम ॥ १ ॥

सीर भरो पानी पीवै रे टका भरो अन्न खाय। बतलायां बोली नहीं रै राणा गयो रिसाय ॥ २ ॥

राणा मोपर कोपियो रे रति न राखो मोद। ले जाती बैकुण्ठ में यो तो समझ्यो नहीं सीसोद ॥ ३ ॥

राणो सांड्यो मोकलो जाज्यो एकै दौड़। कुल की तारण स्त्री या तौ मुरड़ चली राठौड़ ॥ ४ ॥

सांड्यो पाछो फेरयो रे परत न देख्यां पांव। कर शूरा पण तीसरी म्हारे कुण राणो कुण राव ॥ ६ ॥

राती माती प्रेम की विष भगत को मोड़। राम अमल माती रहै धन मीरां राठौड़ ॥ ७ ॥

भजन।

दरश बिन दूखन लागे नैन ॥ टेक ॥
जब से तुम बिछुरे प्रभु जी कबहु न पायो चैन।
शब्द सुनत मेरी छतियां कम्पै मीठे लगे तुम बैन।
इक टक टकी पंथ निहारूं भई छमासी रैन।
बिरह बिथा कासूं कहूं सजनी बह गई करवत अैन।
मीरां के प्रभु कब जो मिलोगे दुःख मेटन सुखदैन।

भक्ति के नियम।

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना गो रक्षण और उस के लिए गोचर भूमि बढ़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना। वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना। सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना। राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. वार्षिक चन्दा सर्वसाधारण से २) होगा।

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. अश्लील और अपरिचित विज्ञापन नहीं लिए जावेंगे।

६. लेखों को प्रकाशित करना और और घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नाम से और विज्ञापन व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

विषय सूची।

नं०	विषय	पृष्ठ
१.	मङ्गलाचरण।	१
२.	प्रार्थना।	४
३.	संसार समाचार	६
४.	भजन	७
५.	भक्ति। (ले० भूमानन्द ब्रह्मचारी।	९
६.	निष्काम कर्म करो। (सम्पादक)	१४
७.	भक्त की रचना। (ले० पं० लादूराम जोशी)	१७
८.	पतिव्रता का प्रभाव (ले० श्रीमती सूरज देवी)	१८
९.	शाश्वत जीवन। (ले० श्री० रामचन्द्र जज एम० ए०)	२४
१०.	वेदान्त का विचार।	२७
११.	भक्ति के लक्षण।	३०
१२.	भजन।	३१

बिना गुरु के सिद्धान्त कौमुदी।
भाषाफक्किका प्रकाश ॥

इस पुस्तक में बहुत ही सरल भाषा में तथा प्रश्नोत्तर के रूप में सिद्धान्त कौमुदी की गूढ़ फक्किकाओं को समझाया गया है। विद्यार्थियों के बड़े लाभ की पुस्तक है इस से विद्यार्थी लघु पढ़ कर स्वयं सिद्धान्त कौमुदी पढ़ सकते हैं। मूल्य केवल ॥)

ज्ञानधर्मोपदेश।

इस छोटी सी पुस्तक में वेद शास्त्र तथा धर्म का सार संगृहीत है और वेदान्त की उत्तम कविताओं का संग्रह है। मूल्य ~)॥।

वेदोपनिषत्।

इस पुस्तक में ईश, कठ, केन, मुण्डक, और माण्डूक्यादि उपनिषदों तथा वेदों के उत्तम २ मन्त्रों का अर्थ सहित संग्रह है। मूल्य ।~)

अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला।

इस पुस्तक में गीता और उपनिषदों से १०८ बहुत ही उत्तम श्लोकों का संग्रह है। यह नित्य पाठ करने की पुस्तक है। मूल्य ~)।

भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता।

इस पुस्तक में प्रथम मूल है तत्पश्चात् अन्वय तथा सरल संस्कृत में प्रत्येक मूल के पर्याय हैं फिर सरल हिन्दी भाषानुवाद है। यह गीता के जिज्ञासु तथा कथक्कड़ों के बहुत ही लाभ की पुस्तक है पृष्ठ संख्या ४२६ होने पर भी हमने भक्त जनों के हितार्थ मूल्य केवल ॥≈) ही रक्खा है शीघ्रता कीजिये केवल १००० ही प्रतियाँ हैं जिन के अति शीघ्र ही निकल जाने की आशा है।

सत्य शब्द संग्रह।

इस पुस्तक में महात्माओं की उत्तम २ वाणियों का संग्रह है। वेदान्त विषय की उत्तम कोटि की कवितायें कवित्त तथा सवैये हैं। अन्त में विचार सागर है। यह भक्त जनों के नित्य पाठ की बड़ी ही उत्तम पुस्तक है मूल्य ।≈)

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम रामपुरा रेवाड़ी।